अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

विजय तेंदुलकर के नाटकों में सांस्कृतिक वातावरण

Dr Kamna Kaushik
Associate Professor Hindi, Vaish College Bhiwani

श्री विजय तेंदुलकर का जन्म महाराष्ट्र के कोल्हापुर में 6 जनवरी 1928 को सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता जोद्योडोपंत तेंदुलकर एक छोटा सा प्रकाशन संस्थान चलाते थे। इनकी माता जी घरेलु महिला थी, एक आदर्श माँ के अनुरूप इनका पालन–पोषण किया। माता जी की स्पष्टता व निडरता का प्रभाव विजय तेंदुलकर के व्यक्तित्व और लेखन दोनों में दृष्टिगोचर होता है। मात्र 6 वर्ष की आयु में पहली कहानी व 11 वर्ष आयु में पहले नाटक की रचना विजय जी द्वारा की गई। 'श्रीमंत' नाटक की रचना के बाद इनकी गणना मराठी के बेहतरीन नाटककारों में की जाने लगी। 1950 और 1960 के दशक में उन्होंने मराठी रंगमंच को नया मोड़ दिया। विजय तेंदुलकर जी का विवाह आदर्श पत्नी एवं अच्छी सहयोगिनी निर्मला से हुआ। निर्मला विवाह से एक पुत्र राजा व पुत्रियां प्रिया, सुषमा और तनुजा हुई। दूरदर्शन के धारावाहिक 'रजनी' में रजनी की भूमिका निभाने वाली इनकी पुत्री प्रिया टेलिविजन की पहली स्टार बन गई। 2002 में उनकी स्टार पुत्री प्रिया का देहावसान् हो गया। इससे पूर्व 2001 में इनकी पत्नी और पुत्र राजा का आकस्मिक निधन हो गया। पत्नी और बच्चों की असामयिक मृत्यु से ये बिखर गए और बीमार रहने लगे। मास्थेनिया ग्रेविस से पीड़ित होकर 19 मई सन् 2008 को पुणे के प्रयाग अस्पताल में लेखक का देहावसान हो गया। उन्होंने 35 नाटक व 27 एकांकियों की रचना की। ग्यारह फिल्मों की पटकथाएँ लिखी। आजीवन पत्रकारिता से समाज सेवा करते हुए साहित्य की विभिन्न विद्याओं पर कलम चलाई। जिसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से है :–

अनुवाद : 'आधे–अधूरे' व 'तुगलक' (हिन्दी का मराठी में अनुवाद)

नाटक : 'श्रीमंत', 'गिद्ध','सखाराम बाइंडर', 'कन्यादान', 'पंछी ऐसे आते है', 'जात ही पूछो साधु की', 'खामोश! अदालत जारी है', 'कमला', 'घासीराम कोतवाल', 'मीता की कहानी'।

फिल्मी पटकथा : 'मंथन', 'निशान्त', 'आक्रोश' और 'अर्द्धसत्य' सहित कुल ग्यारह फिल्मी पटकथाएँ।

विजय जी को उत्कृष्ट नाट्य लेखन, पटकथा लेखन व भारतीय साहित्य में अभूतपूर्व अवदान पर महाराष्ट्र सरकार सम्मान (1956, 1969, 1972), संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (1971), फिल्म 'मंथन' की पटकथा के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार (1977), पद्मभूषण (1987), फिल्म फेयर पुरस्कार (1980, 1999) संगीत नाटक अकादमी फेलाशिप पुरस्कार (1999) प्राप्त हुए। विजय तेंदुलकर के नाटका में सांस्कृतिक वातावरण का चित्रण प्रस्तुत करने से पूर्व संस्कृति पर प्रकाश डालना अनिवार्य है। संस्कृति शब्द 'सम' उपसर्ग के साथ 'डुकृञ–करणे धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से निर्मित होती है। 'संस्कृति' शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' का पर्याय है। संस्कृति को भिन्न–2 विद्वानों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार– "जाति या राष्ट्र की वे सब बातें जो उसके (मनुष्य) मन रूचि, आचार–विचार, कला–कौशल एवं सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक रहती हैं, संस्कृति के अंतर्गत आती है।"[1]

रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में– "संस्कृति जीवन का तरीका है– यह तरीका जमा होकर उस समाज पर छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।"[2]

एडवर्ड बी० टायलर संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते हैं– "संस्कृति ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, न्याय, रीति–रिवाज तथा अन्य प्रवृत्तियाँ, जो मनुष्य समाज का सदस्य होने के कारण अर्जित करता है, इन सबका एक सम्मिश्रण है।"[3]

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी अनुसार–"संस्कृति मानव की विविध साधनाओं में निहित होती है।"[4]

पाश्चात्यविचारक एफ० जे० ब्राउन के अनुसार– "संस्कृति मानव के संपूर्ण व्यवहार का एक ढाँचा है जो अंशतः भौतिक पर्यावरण से प्रभावित होता रहता है। यह पर्यावरण प्राकृतिक या मानव निर्मित भी हो सकता है। परन्तु मुख्य रूप से यह ढाँचा सुनिश्चित विचारधाराओं, प्रवृत्तियों, मूल्यों तथा आदतों द्वारा प्रभावित होता है, जिसका विकास समूह द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता रहता है।"[5]

जब हम तेंदुलकर के नाटकों में सांस्कृतिक चित्रण की बात करते हैं तो विजय जी के नाटक में सांस्कृतिक वातावरण का चित्रण ग्रामीण, शहरी, गृहस्थ आदि बिन्दुओं के आधार पर देखा जा सकता है। 'सखाराम बाइंडर' में विकृत होती जा रही भारतीय ग्रामीण संस्कृति का चित्र है। नायक सखाराम को विवाह प्रथा में विश्वास नहीं है। वह विवाह करने अपेक्षा रखैल रखना उचित समझता है। यह बिन्दु परम्परागत भारतीय ग्रामीण संस्कृति का नहीं है। नायक सखाराम अपने मित्र दाउद से कहता है कि–

"सखाराम : अच्छा हुआ यार! कि हम लोग किसी के ब्याहे मरद नहीं हुए। जो हैं उसी में मस्ती है। मिलता सब कुछ है बंधन कोई नहीं। ऊब लगी, उसे लगी, अपने को लगी। चल साले खुला रास्ता। खतम खेल। साली बेकार की मगजपच्ची नहीं– उसको आसरे का आसरा और अपने को घर का खाना–सस्ते में भूख मिट जाती है। उठकर किसी के दरवाजे जाना नहीं पड़ता। और फिर घर में वह दब कर रहती है। ठीक से काम–धाम करती है क्योंकि उसे मालूम है कि गलती होते ही बाहर का रास्ता नापना पड़ेगा। वैसे औरत की जात होती चतुर है। पर ब्याह होते ही वह गाफिल हो जाती है दाउद मियाँ! वह सोचती है कि आदमो अब जाएगा कहाँ । मगर वह भी ठहरा एक पाजी। यह उसे फँसा लेता है पर आप नहीं फँसता। शादी करके छरिंदे पंछी की तरह उड़ता फिरता है।"[6]

ग्रामीण सांस्कृतिक वातावरण में पुरूष द्वारा स्त्री पर किए जाने वाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। नायक सखाराम स्त्री को मारना–पीटना, जबरदस्ती करना, अत्याचार करना अपना अधिकार मानता था। स्त्री को बेजान समझते हुए उसका शारीरिक–मानसिक शोषण करना पुरूषों के

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

लिए एक सामान्य और रोजमर्रा के कार्यों की भाँति है। अन्यत्र स्थल पर पुरूष अत्याचारों का उदाहरण दृष्टव्य हैयथा–

''सखाराम : हँसेगी कि नहीं?

लक्ष्मी : बदन बहुत दर्द कर रहा है– (कराहती है) आग जल रही है सारे बदन में............

सखाराम : जलने दे। हँस पहले। कुछ कर रहा हूँ मैं? इस घर में रहना है तो मेरी बात माननी पड़ेगी। जो मैं कहूँगा करना पड़ेगा। हँस, नही तो अभी घर से निकाल बाहर कर दूँगा। निकालूँ? चल उठ..............

लक्ष्मी : ओह छोड़ो मुझे.........उई दैया............ हाय....................

सखाराम : जब तक हँसेगी नहीं, नहीं छोड़ूँगा................

लक्ष्मी : जान निकल रही है मेरो। मर जाऊँगी ऐसे तो..................

सखाराम : मर जा साली पर हँस पहले...................

लक्ष्मी : (कराहती है)

सखाराम : हँस जल्दी.............. हँस....... हँसती है कि मरोड़ूँ हाथ? मरोड़ूँ ठहर पेटी ले आता हूँ सबेरे वाली। हँस नही तो.............. हँस। उसी तरह हँस–हँस जल्दी साली.............. सुनाई दिया कि नहीं....................''[7]

विजय जी के नाटक शहरी जीवन पर केन्द्रित है। शहरी वातावरण में परिवार के सभी सदस्य एकसाथ रहते हुए भी एक–दूसरे को मान–सम्मान नहीं देते। शहरी सांस्कृतिक वातावरण अत्यन्त विद्रूप, अविश्वसनीय, कलहपूर्ण और स्वार्थमय हो गया। एक साथ रहते हुए भी उनमें मधुरता का अभाव है। रिश्ते खोखले एवं बनावटी होते जा रहे है। रोजगार की समस्या, परस्त्री गमन, मदिरापन, वेश्यावृत्ति आदि समस्याएँ शहरी वातावरण में देखने को मिलती है। स्वतन्त्र भारत देश में स्त्री की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। उस समय भी सन् 1982 में स्त्रियों को खरीदा व बेचा जाता था। शहरी वातावरण में भी स्त्री पुरूष के पाँवों की जूती बनी हुई है। आधुनिकता के नाम पर उसके साथ अत्याचार व शोषण बढ़ता ही जा रहा है। यथा–

''जयसिंह : चंबल के उस तरफ लुहारपुरा में इंसानों की हाट लगती है.................. इंसानों की हाट! छोटी बड़ी उमर की औरतों की वहाँ खुलेआम नीलामी की जाती है। लोग दूर–दूर से बोली बोलने आते हैं।

सरिता : औरतों का नीलाम?

जयसिंह : औरतों का नीलाम! विश्वास नहीं होता न? बोली बोलने वाल ग्राहक औरत को टटोल–मसलकर अन्दाजते हैं...... कसवाँ है या थुलथुल है? जवान है या उतरी हुई?

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

अच्छी–भली है................. या रूगियल?.......... छातियाँ मजबूत हैं? कमर में कस है? जाँघों में.............................''[8]

गृहस्थ जीवन में भी परिवार की टूटन और उनका विघटन विजय जी के नाटकों में चित्रित हुआ है। 'सखाराम बांइडर' नाटक में गृहस्थ जीवन का चित्रण हुआ है। विवश लक्ष्मी अपने पति के अत्याचारों से तंग आकर अपनी गृहस्थी को छोड़कर सखाराम के साथ घर बसाती है। सखाराम भी उस पर अन्याय, शोषण और अत्याचार करने से पोछे नहीं हटता, फिर भी लक्ष्मी गृहस्थी में एक नई रोशनी उत्पन्न करने की कौशिश करती है यथा–

"लक्ष्मी : फिर भेंट नहीं होगी। माँ–बाप ने जिसके गले बाँधा वह नसीब में नहीं रहा। उसको मेरी जरूरत नहीं रही। यहाँ आई तुम्हारे पास! तुमको अपना माना। अपना मान के सब कछ दिया। कुछ रक्खा नहीं। .... अपनी देखभाल करना। बहुत पीना नहीं। ठीक समय से खाना खा लेना। पूजा करते रहना भूलना नहीं। उससे पुन्न होगा। देवी की भभूत भीतर सिकहर पर पुड़िया में रखी है, प्रेस जाते बखत लगा लिया करना।''[9]

विश्वास गृहस्थ जीवन का आधार है। जब पति–पत्नी के मध्य यह विश्वास डगमगाने लगे तो रिश्तों में दरार आने लगती है। यहीं दरार दूरी उत्पन्न कर देती है। जिससे रिश्ते में किसी दूसरे को आने में देर नहीं लगती। 'गिद्ध' नाटक में अवैध संम्बन्धों रूपी संदेह बीज के कारण गर्भवती पत्नी रमा के प्रति रमाकात की लापरवाह प्रवृत्ति और व्यंग्य भरी बातें इसी तथ्य को उजागर करती है–

''रमा : (स्वप्निल होकर) मैं माँ बनूँगी। क्या सचमुच मैं माँ बनूँगी?

रमाकांत : और नहीं क्या मै बनूँगा? वो जो दाई और पालना और जाने क्या–क्या पक्का कर रक्खा है, वो क्या मेरे लिए है? पालना तो नया ही बनवाने का इरादा था, मगर कहते है कि पुराना ही होना चाहिए, जिसमें खूब सारे बच्चे खेल चुके हों। तभी तो साला जान–बूझकर कबाड़ में से निकलवाया, रंग दिलवाया। हम लोग साला उसी में पलकर बड़े हुए।''[10]

प्रेम विवाह में समर्पण की संभावना होती है। परन्तु आजकल युवक–युवती जल्दबाजी में परिवार के विरूद्ध जाकर विवाह कर लेते है। प्रेम विवाह का परिणाम सकारात्मक व नकारात्मक दोनों रूपों देखने को मिलता है। नारी प्रायः अपने विवाह को निभाने का प्रयास करती है अर्थात् गृहस्थ जीवन की तमाम कटुताओं और विपरीत परिस्थितियों के बावजूद गृहस्थ जीवन को बचाने का प्रयास करती है। नर और नारी दोनों की समझदारी से रिश्ते में सरसता बनी रहती है। इसके विपरीत दोनों में से एक भी भटक जाता है तो गृहस्थ जीवन मे परेशानी आना सामान्य है। एक भी विवेक, धैर्य, संयम व प्रेम से गृहस्थी को बचाने का प्रयास करता है तो गृहस्थ जीवन के संभलने की संभावना शेष रहती है। इसी सत्य को 'कन्यादान' नाटक में ज्योति और अरूण के वैवाहिक जीवन के सन्दर्भ में विवेचित किया गया है यथा–

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

''ज्योति : (कठोर स्वर में) मेरा पति है। मैं विधवा नहीं हूँ। अगर हो भी जाऊँगी तो आपके दरवाजे पर दस्तक नहीं दूँगी। मैं ज्योति यदुनाथ देवलालीकर नहीं हूँ। ज्योति अरूण आठवले हूँ। हरिजन नहीं कहती, मुझे उससे चिढ़ है। मैं हरिजन नहीं हूँ, मेहतरानी हूँ। मुझे मत छुइए। मेरी छाँह से बचिए, नही तो मेरी आँच आपके सुखासीन मूल्यों को झुलसाकर रख देगी।''[11]

गृहस्थ जीवन में संतान की चाह 'गिद्ध' नाटक में चित्रित की गई है। पति–पत्नी अपने वैवाहिक जीवन की सार्थकता सन्तानोत्पत्ति से मानते है। सन्तानोत्पति न होने पर मन्नते माँगते है, साधु–सन्यासियों के चक्कर लगाते है। ऐसे समय में जब विभिन्न उपायों से पत्नी गर्भवती हो जाती है तो पति व्यवहार में विनम्रता और जवाबदेही का स्वतः समावेश हो जाता है। वह अपनी बुरी आदतों पर नियन्त्रण करने का प्रयास करता है। यथा–

''रमाकांत : जान–आन कुछ नहीं जाती। थोड़े ही दिन बाकी हैं। चार महीने जाते समय ही क्या लगता है। फिर देखना, आएगा एक नन्हा–सा राजकुमार जिसको खिलाया करेगी रमा रानी–पता ही नहीं चलेगा, कब सुबह होती है कब शाम। साला पति तक से वास्ता नहीं रह जाता औरतों का....................... साला बच्चा ही बच्चा........

रमा : (स्वप्निल होकर) मैं माँ बनूँगी? क्या सचमुच मैं माँ बनूँगी?

रमाकांत : और नहीं क्या मैं बनूँगा? वो जो दाई और पालना और जाने क्या–क्या पक्का कर रक्खा है, वो क्या मेरे लिए है? पालना तो नया ही बनवाने का इरादा था, मगर कहते हैं कि पुराना ही होना चाहिए, जिसमें खूब सारे बच्चे खेल चुके हों। तभी तो साला जान–बूझकर कबाड़ में से निकलवाया, रंग दिलवाया। हम लोग साला उसी में पलकर बड़े हुए।''[12]

भारत देश पुरूष प्रधान है। यहीं कारण है कि यहाँ माता–पिता लड़की के जन्म पर खुश नहीं होते। लड़की के जन्म पर उन्हें अपनी बेटी के पालन–पोषण की चिन्ता होतो है। समाज में दुष्प्रवृत्ति के व्यक्तियों से अपनी बच्ची को सुरक्षित रखने हेतु चिंतित दिखाई देते है। बड़ी होने पर विवाह की समस्या। साँवला रंग होने पर भी उसे लड़के के परिवार द्वारा व लड़के द्वारा नकार दिया जाता है। उचित दहेज न मिलने पर भी रिश्ता नहीं होता। 'पंछो ऐसे आते है' नाटक में माँ–बाप की इसी चिन्ता को चित्रित करते हुए कहते है कि–

''अन्ना : बस हो चुकी छान–बीन। यह आखिरी घर देख लिया। अब किसी के दरवाजे नाम रगड़ने मैं नहीं जाने का। कहे देता हूँ।

माँ : मगर मै कहती हूँ। इस तरह मिट्टी में सर छुपा लेने से बोझा तो नहीं उतरेगा ना। लड़की तो हमारी ही है। बुरी है तो क्या? उसे कुत्ते बिल्ली की तरह जंगल मे तो नहीं छोड़

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

सकते? उसका सब कुछ कायदे ही से तो करोगे? मेरा दिल तो कहता है कि बार जरूर ही बात पक्की हो जाएगी।

अन्ना : तुम्हारा दिल तो ऐसे ही कहता है। अरे तकदीर ही खोटी है अभागिन का। कितने तो आ आकर चले गए, एक भी तो इसे पसंद नहीं करता। इसके साथ की लड़किया के घर बरही–छठी भी हो गईं। भगवान जाने इसकी कुंडली में कौन–सी कसर रह गई। मैं तो हार गया हूँ अब।''[13]

नारी केवल बेचारी लाचार ही नहीं होती। शहरी वातावरण में पली–पढ़ी युवती घर की दहलीज से बाहर कदम निकालकर अपने आपको अति बुद्धिमान, स्वावलंबी और आत्माभिमानी समझते हुए पथ भ्रष्ट भी हो जाती है। मदिरा सेवन फैशन समझने लगती है। अर्थ लालसा उसे मानवीय मूल्यों से इतना दूर ले जाती है कि अपने माता–पिता के विरूद्ध भी षडयन्त्र का जाल बुनने से नहीं कतराती। यथा–

"माणिक : ओहो! जैसे गुनाह किया हो यहाँ खुद ही पूरा नहीं पड़ता, उसको कहाँ से लाकर दें? (गिलास लेकर टीपॉय तक जाती है। गोलियों वाली शीशी खोलकर गोली खाती हैं शराब पीती है। सिगरेट पीती है) पिछले दो महीनों से वो हरिवल्लभदास के यहाँ एक लेटेस्ट डिजाइन का नेकलेस लाना चाहती हूँ, पर खरीद ही नहीं पाती! पैसे के नाम पर ना–ना । महज वन थाउजंड की बात है । पपा से पूछने जाओ तो जैसे काटने को दौड़ते हों। बँटवारें के बाद से तो उनकी अक्ल ही सठिया गई है। आर उमा ? एक नम्बर का मक्खीचूस, दमड़ीचोर ! उससे तो पूछना ही बेकार है मवाली दुनिया भर का। कहता है, लात दूँगा। रमा का कहना ही क्या? बड़ी सादगी से तुम्हारी तरफ इशारा करके चुप्पी साध लेता है।''[14]

तेंदुलकर जी के नाटकों में शहरी वातावरण में पात्रों का पतित रूप देखने को मिलता है। 'कमला' नाटक का पुरूष पात्र जयसिंह द्यद्म रूप से धोखेबाज व स्वार्थी पात्र के रूप में चित्रित हुआ है। 'कन्यादान' नाटक में अरूण आठवले पतित और घृणित पात्र के रूप में चित्रित हुआ है। अधिकांशतय नाटकों में शहरी संस्कृति के पतन की ओर संकेत करते हुए प्रायः सभी पुरूष पात्र घोर स्वार्थी, अन्यायी व षड्यंत्रकारी रूप में चित्रित हुए है। 'गिद्ध' नाटक में पारिवारिक रिश्तों की मर्यादा तार–तार होती दिखाई गई है यथा–

''उमाकांत : यह मत भूलिए कि आप हमारी वजह से जिंदा है। समझते हैं?

रमाकांत : वर्ना साली कब की फुँक गई होती आपकी चिता। तेरहीं के लड्डू भी बँट चुके होते......

पपा : बंद करो तुम्हारी बकबक! स्साले हरामी के पिल्ले। हमारी तेरहीं करोगे? हमारे जीते जी तेरहीं का जशन मनाते हो भैनचोदो?

रमाकांत : तेरहीं नही ंतो बारहीं सही। व्हॉट ब्रदर?

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

पपा : अगर चाहूँ तो गाँड पर लात मारकर निकाल दूँ तुम सबको!''[15]

शहरी वातावरण में आधुनिकता के नाम पर आते जा रहे परिवर्तन से मान–मूल्यों एवं आदर्श, क्षीण होते जा रहे है। लड़कियां समलिंगी सम्बन्धों को बड़े गर्व से अपनाने लगी। 'मीता की कहानी' नाटक में सुमित्रादेव और नपा के समलिंगी सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए विजय जी लिखते हैं–

''सुमित्रा : नाटक में उस रोज जब मैं लव–सीन कर रही थी, सब एकदम उभरकर सामने आ गया। उसका स्पर्श............... गले लगाते ही उस देह की हबिस.......... एक किस्म भयानक भूख....... बहुत बहुत डरावनी.......... बहुत सुखकर....... एकदम असली........ एक चुनचुनाहट....... एक अजीब सी सनसनी.... . वो मुझसे दूर हो गई थी। जैसे उसने जान लिया हो.........

(अब शुष्क स्वर में)

और तुम लोग महज एक नाटक देख रहे थे। एक नकली लवसीन! मैंने उस रात जैसे बिजली की कौंध में देखा....... मुझे पुरूष की गरज नहीं; मुझे स्त्री चाहिए। मैं अलग हूँ, अलग हूँ।''[16]

परिवर्तन ने सभी को प्रभावित किया है। चाहे नर–नारी हो, सरकारी कर्मचारी हो या पत्रकार हो। परिवर्तन मानवीय मूल्यों को निगल रहा है। पत्रकारिता जनमानस की भलाई के लिए होता है। देश सेवा पत्रकारिता का उद्देश्य होता है। अर्थ पिपासा से पत्रकार भी धनार्जन की चाह में अपने कर्तव्य से विमुख होता जा रहा है। इसी सत्य का उजागर 'कमला' नाटक में किया गया है यथा–

''काका : कहूँ........... अगर तुम्हारे इस नए जर्नलिज्म का उद्‌देश्य रूपया कमाना नहीं है तो वह.. ....

जोर देकर

'वन्ध्या संभोग' है। तुम शायद इस हिन्दी शब्द को मुश्किल समझो, इसलिए बता दूँ कि कुछ.......... याने कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। भाई मेरे पहले आम आदमी की भाषा में बोलो लिखो, फिर चाहे उसे जगाओ.........''[17]

'कन्यादान' नाटक में सरकारी कर्मचारियों की कार्यशैली को चित्रित किया गया है यथा–

''नाथ : (फोन पर लगभग चिल्लाकर) हॅलो.......... आसनगाँव वाली बस कै बजे चलती है? हॅलो.. ...... आसनगाँव वाली बस .... पूना आसनगाँव......... हाँ हाँ, पूना आसनगाँव.......... कोई बस सर्विस इस तरह की हई नहीं?......... है कैसे नहीं?......... बस सर्विस है........ च् मैं बता रहा हूँ........ मैं गया हूँ...... ... सदस्य, विधान–परिषद्.......... नमस्ते बाद में करिए, पहले बस छूटने का टाइम बताने का कष्ट कीजिए............. कै बजे?.......... (परेशान होकर रिसीवर रख देते हैं।) कट हो गया। अव्वल तो नम्बर ही नहीं मिलता था। मिला तो सुनाई नहीं पड़ता था। इन्हें खुद ही अपनी बस–सर्विसों का पता नहीं........ और अब तो लाइन ही कट गई। अजीब गोरखधंधा है। कहता है, वहाँ बस नहीं जाती। इसे जाने किसने कंट्रोलर बना दिया...............''[18]

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

विजय जी के नाटकों में सरकारी कर्मचारी की अकर्मणता को प्रकट किया गया है तथा साथ ही साथ यह भी चित्रित किया गया है कि इनकी कार्यशैली भी अन्यायपूर्ण है। अन्यायपूर्ण कार्यशैली के चित्रण द्वारा शहरी सांस्कृतिक पतन को चित्रित किया गया है।

नारी मन अत्यन्त कोमल व भावुक होता है। वह जल्द ही पिघल जाती है और सभी गलतियों को माफ कर देती है। भारतीय संस्कृति से प्रेरित भारतीय पत्नी के सन्दर्भ में यह बात पूर्णतयः सत्य है। 'कमला' नाटक में पत्नी सरिता सेवक की भाँति अपने पति के आदेशों का पालन भी करती है एवं जरा सी लापरवाही पर पति द्वारा प्रताड़ित भी की जाती है। पति के बढ़ते अत्याचारों से तंग आकर जब वह गृहस्थ जीवन को दाँव पर लगाकर विद्रोह के लिए कदम बढ़ाने का साहस करती है, लेकिन अपने पति को मुसीबत में देखते ही पिघल जाती ह और गृहस्थी को पुनः बचाने का प्रयास करती है। 'कमला' दासी वाले केस में इसी सत्य को उजागर करते हुए लेखक लिखते हैं कि–

''सरिता : वो खतम नहीं होगी। लेकिन इस घड़ी मैं उसे मन के किसी कोने में बंद कर दूँगी, भूल जाऊँगी। एक वो दिन भी आएगा, जब मेरा गुलाम बने रहना रूक जाएगा। मैं तब इस्तेमाल करके फेंक देने वाली चीज नहीं रहूँगी काकासाहब। मैं अपनी इच्छा से जिऊँगी और कोई भी मुझ पर अपना अधिकार नहीं जतला पाएगा। वह दिन जरूर आएगा। उस दिन की खातिर मुझे जो भी कीमत चुकानी पड़ेगी, मैं चुकाऊँगी।

x x x

(काका) साहब धीरे–धीरे गेस्ट रूम में चले जाते हैं। सरिता एक–एक लैम्प बुझाती हुई अंत में एक लैम्प जला रखती है। जयसिंह के पास पहुँचकर हौले से उसके जूते उतारती है और सोफा के पास धरती पर बैठ जाती है थककर आँखें बंदकर लेती है। फिर खोलती है। उसकी आँखें दूर कहीं देख रही हैं। उनमें अथाह शांति। मुँह पर निश्चय की चमक)''[19]

ग्रामीण सभ्यता–संस्कृति प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से शहरी संस्कृति से प्रभावित होती जा रही है। ग्रामीण संस्कृति आधुनिकता की दौड़ में दौड़ती जा रही है। ग्रामीण संस्कृति में रहने वाला पिता भी अपनी बेटी को यहीं समझाने का प्रयास कर रहा है कि लड़के वाले नए फैशन के हैं अतः उसकी लड़की नए फैशन के अनुरूप वस्त्र पहने और शर्माकर चुपचाप खामोश न बैठे अपितु मुस्कराकर आत्मविश्वास के साथ उनके समक्ष आए। पिता अपनी बेटी अन्ना को शादी के लिए आधुनिक फैशन को अपनाने के लिए प्रेरित करते हुए कहता है कि–

''अन्ना : सुन! आज जरा अच्छी तरह से सज–वज के बैठ। कुछ लोग देखने आने वाले हैं। जरा नए ख्याल के हैं। नए फैशन के। इसलिए फैशनेबल तरीके से सारी पहन। साथ बिना बाँह का मैच करता हुआ कोई ब्लाउज। और चुटिया खोलकर कोई नया जूड़ा–ऊड़ा बना ले।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

ऐसी ठकुरानी बनके न बैठ समझी और चेहरे पर जरा हँसी रहे। जरा मुस्कुराना–वुस्कुराना। सोंठ ऐसा मुँह बनाकर बैठने का नहीं। बेवकूफ कहीं की।''[20]

ग्रामीण संस्कृति का चित्रण करने वाले उपादानों का तेंदुलकर जी के नाटकों में अभाव है। पारम्परिक ग्रामीण संस्कृति का चित्रण इनके नाट्य साहित्य में अत्यन्त सीमित शब्दों में हुआ है यथा–

''शाम का समय। खपरैला घर। जैसा गाँवों में होता है। बाहर का कमरा और उसके पीछे रसोई दिखाई दे रही हैं। घर के बाहर बच्चों का शोरगुल.............''[21]

तेंदुलकर जी रीति–रिवाज और परम्पराओं का भंजन करने वाले नाटककार होकर भी यत्र–तत्र नाटकों में भारतीय संस्कृति को उद्घाटित वाले रीति–रिवाजों का चित्रण करते है। रीति–रिवाज संस्कृति का अभिन्न अंग है। संस्कृति का प्रभाव मानव को प्रभावित करता ही करता है। वह इन सबसे कितना ही दूर क्यों न चला जाए? कितना ही रीति–रिवाजों, वेशभूषा, खान–पान त्योहार को परिवर्तित कर ले। संस्कृति का प्रभाव उसके जीवन को प्रभावित करता ही करता है। नाटक 'घासीराम कोतवाल' में विवाह अवसर पर भारतीय रीति–रिवाजों का चित्रण इस प्रकार से हुआ है–

''मंच पर विवाह विधियाँ।

सूत्रधार : चलो जी चलौ! जल्दी चलौ
जल्दी–जल्दी–जल्दी–जल्दी,
जल्दी चलौ–
नाना पेस्वा को परधाडन
उमर लड़कैयाँ, नादाडन
मूँछे पकि आई काल–परौं
झरी नायँ बतीसी सिगडारी अब लौं
पाँव छवै सैं कम्मर झकि आई
धन धरबे सैं आँखें मिंचि आई
यों तो नाना कर चकै छै शादियाँ
किस्मत बुरी फलती नहीं छै बीवियाँ
करना पड़ा है सातवाँ उनका बियाह
दिल नहीं भरता, करैं क्या आह।''[22]

तेंदुलकर जी के नाटकों में भारतीय संस्कृति के अनुरूप पात्रों की सृष्टि हुई है, वहीं स्वयं के दृष्टिकोण के अनुरूप भी पात्रों की सृष्टि तेंदुलकर जी के नाटकों में चित्रित हुई है। 'सखाराम बाइंडर' नाटक में लेखक के निजी दृष्टिकोण के आचार–विचार वाले पात्र के माध्यम से परम्परागत आचारों–विचारों पर करारी चोट चित्रित करते हुए लिखते है कि–

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

''सखाराम : तुम्हें बताऊँ दाउद मियाँ, ये सब के सब मरद साले पौन आठ हिजड़े। खुद तो बच्चा पैदा कर नहीं पाते गुस्सा उतारते हैं औरत पर। उसी को पीसते–कूँचते हैं नामर्द साले! और वह तो विचारी ठहरी बेजबान जानवर। मिट्टी का लोंदा समझो–''[23]

निष्कर्षतयः यहीं कहेंगे कि तेंदुलकी जी के नाटकों में सांस्कृतिक वातावरण के चित्रण का फलक बहुत व्यापक है। तेंदुलकर जी के नाटकों में संस्कृति को परिलक्षित करने वाले विभिन्न सांस्कृतिक उपादानों का चित्रण हुआ है। इनके नाटकों में नारी की स्थिति का यथार्थ चित्रण ग्रामीण व शहरी दोनों संस्कृतियों में हुआ है। पुरूषों की दोहरी मानसिकता को चित्रित किया गया है। गृहस्थी की टूटन–बिखराव को चित्रित करते हुए परिवार को टूटने से बचाने के प्रयास भी दिखाए गए हैं। गृहस्थ जीवन में पति–पत्नी की नोक–झोंक के अच्छे दृश्य उपस्थित किए हैं। सांस्कृतिक चित्रण बंधी–बंधाई परिपाटियों अनुसार न करके अंतर्मन के सहज प्रभाव से नाटकों में संस्कृति चित्रण का सजीव वर्णन हुआ है।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

संदर्भ सूची–

1. 'नालंदा विशाल सागर', पृ० 1388
2. 'संस्कृति के चार अध्याय' : रामधारी सिंह दिनकर, पृ० 653
3. 'प्रिमिटिव कल्चर'(लंदन जे०मुरे–1928) : सडवर्ड वी टायलर, पृ० 1
4. 'अशोक के फूल' (निबन्ध संग्रह) : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. 'एजुकेशनल सोशियालाजी' (न्यूयार्क:प्रेंटिस हॉल 1949) : एफ.जे.ब्राउन, पृ० 63
6. 'सखाराम बाइंडर' : अनुवादिका सरोजिनी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, पृ० 24–25
7. 'सखाराम बाइंडर' पृ० 147–148
8. 'सखाराम बाइंडर' पृ० 51–52
9. 'कमलाः : अनुवादक बसंत देव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 25
10. 'सखाराम बाइंडर' पृ० 64–65
11. 'गिद्ध', पृ० 94–95
12. 'कन्यादान', पृ० 91
13. 'पंछी ऐसे होते हैं' : अनुवादिका सरोजिनी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० 32
14. 'गिद्ध', पृ० 16
15. 'गिद्ध', पृ० 25–26
16. 'कन्यादान', पृ० 64–65
17. 'कमला', पृ० 40–41
18. 'कन्यादान', पृ० 9–10
19. 'कमला', पृ० 85–86
20. 'पंछी ऐसे होते हैं', पृ० 39
21. 'सखाराम बाइंडर' पृ० 2
22. 'घासीराम कोतवाल', पृ० 62
23. 'सखाराम बाइंडर' पृ० 24